डॉ० बुद्धदेव प्रसाद सिंह
सहायक प्राचार्य(assist.Prof.),
हिन्दी विभाग,
डी.बी. कॉलेज जयनगर, मधुबनी (बिहार)
(ल०ना०मि०वि०वि०दरभंगा की अंगीभूत इकाई)

पाठ्य सामग्री,

स्नातक हिन्दी प्रतिष्ठा, प्रथम वर्ष, द्वितीय पत्र के लिए।

दिनांक- 08.07.2020

(व्याख्यान संख्या- 43)

* सप्रसंग व्याख्या

मूल अवतरण:-

जो सुख होत गुपालहिँ गाऐँ।...
...बहुरि न भव-जल आवै।।

प्रस्तुत व्याख्येय पद्यावतरण के रचयिता हिन्दी साहित्याकाश के देदीप्यमान नक्षत्र महाकवि सूरदास हैं। प्रस्तुत पद्यांश हमारी पाठ्यपुस्तक 'स्वर्ण-मंजूषा' में संकलित है।

डॉ० बुद्धदेव प्रसाद सिंह
सहायक प्राचार्य(assist.Prof.),
हिन्दी विभाग,
डी.बी. कॉलेज जयनगर, मधुबनी (बिहार)
(ल०ना०मि०वि०वि०दरभंगा की अंगीभूत इकाई)

प्रस्तुत पद्य में भक्त-कवि सूरदास ने अपने आराध्य की भक्ति में लगे रहने को सर्वोत्तम माना है और अन्य किसी प्रकार की उपलब्धि को उनकी भक्ति में लगे रहने से तुलना करने योग्य तक नहीं माना है। उनका कहना है कि जैसा सुख श्रीकृष्ण के गुण गाने से प्राप्त होता है वैसा सुख जप, तपस्या तथा करोड़ों तीर्थों में स्नान करने से भी प्राप्त नहीं होता है। भगवान् के कमल समान चरणों में मन लग जाने पर चारों पदार्थ अर्थात् अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष को, यदि कोई दे रहा हो, तब भी भक्तों लेना नहीं चाहता; अर्थात् इन सबसे बढ़कर प्रभु के चरणों में ध्यानस्थ हो जाना है। नंद-नंदन श्रीकृष्ण के हृदय में निवास करने लगने पर भक्त तीनों लोकों की अखंड संपत्ति को भी तृण के समान अर्थात् तुच्छ समझने लगता है। वंशीवट अर्थात् जिस बरगद के पेड़ के नीचे श्रीकृष्ण वंशी बजाते थे उसे तथा वृंदावन एवं यमुना को छोड़कर भक्त विष्णुलोक भी नहीं जाना चाहता है। सूरदास जी कहते हैं कि भगवान का स्मरण करते रहने पर पुनः इस संसार सागर में नहीं आना पड़ता, अर्थात् जन्म-मरण के चक्कर से छुटकारा मिल जाता है।

इस पद्य में स्पष्ट परिलक्षित होता है कि भक्त-कवि सूरदास भी भक्त-कवि तुलसीदास की तरह सिद्धावस्था की अपेक्षा साधनावस्था को अधिक महत्व देने वाले कवि हैं। उनके लिए मोक्ष अथवा किसी प्रकार की सिद्धि प्राप्त

डॉ० बुद्धदेव प्रसाद सिंह
सहायक प्राचार्य(assist.Prof.),
हिन्दी विभाग,
डी.बी. कॉलेज जयनगर, मधुबनी (बिहार)
(ल०ना०मि०वि०वि०दरभंगा की अंगीभूत इकाई)

कर लेने की अपेक्षा भगवान की भक्ति में लगे रहना अधिक उत्तम है। हाँ यह अलग बात है कि भगवान की यह भक्ति स्वाभाविक रूप से जन्म-मरण के चक्कर से छुटकारा दिला देने वाली है। तात्पर्य यह कि जिस भक्ति से सहज रूप में जन्म-मरण के चक्र से भी छुटकारा मिल जाता है और उससे अर्थात् उनकी भक्ति में तल्लीन रहने से अधिक आनंद की कल्पना भी नहीं की जा सकती है, उस भक्ति को कभी छोड़ना नहीं चाहिए। प्रत्येक भक्त को निष्काम और निर्विकल्प होकर आराध्य की शरण ग्रहण करते हुए भक्ति में तल्लीन रहना चाहिए।